हरसूद : न मूल, न सूद, बस रोटी के लाले

दयाशंकर मिश्र

मप्र में इंदिरा सागर बांध परियोजना से प्रभावित 250 गांवों में से एक हरसूद की यही कहानी है, जो इस सदी की सबसे अमानवीय और अलोकतांत्रिक विस्थापन त्रासदियों में से एक को झेलने के लिए विवश हुआ। इस विस्थापन के 3 साल पूरे होने को हैं, लेकिन अभी तक यहां न तो रोजगार के साधनों का इंतजाम किया जा सका है, न ही लोगों को खतरे के निशान की हद से बाहर निकाला जा सका है,अनेक लोगों को अभी तक मुआवजे की प्रतीक्षा है। इस बीच विस्थापित 30 जून को अपनी जड़ों से खदेड़े जाने की तीसरी बरसी मनाने जा रहे हैं, लेकिन अभी तक उनकी रोजी–रोटी का कोई इंतजाम सरकार के कागजी दस्तावेजों से बाहर नहीं आ सका है। आलम यह है कि हरसूद से विस्थापित किए गए 5600 परिवारों में से न्यू हरसूद में बमुश्किल 1600 परिवार ही बचे हैं। बाकी कहां गए, विस्थापित बच्चों की शिक्षा,स्वास्थ्य किस कदर प्रभावित हुआ है। इसका सरकार के पास कोई आंकड़ा नहीं है। इसके साथ ही न्यू हरसूद में पचास से अधिक दलितों के घर हैं,जिनमें से अधिकांश के बच्चों की पढ़ाई दम तोड़ चुकी है।

गौरतलब है कि जून 2004 में विस्थापित की गई ऐतिहासिक हरसूद नगरी को 1815 में राजा हर्षवर्धन द्वारा बसाया गया था। आधुनिक समय का हरसूद दरबदर होने से पहले तहसील का दर्जा पाने वाला ऐसा नगर था, जो कि अनेक गांवों से घिरा हुआ था। वहां लोगों के पुस्तैनी कारोबार थे। किसानों के लिए खेती थी, तो मजदूरों के लिए मजदूरी। कुल मिलाकर सबके लिए कुछ न कुछ जरूर था, जो अब नहीं रहा। इस नए हरसूद में बाहर से देखने वालों के लिए सब कुछ है, लेकिन जरा सा भीतर झांक कर देखें तो पाएंगे कि सरकार के दावे सिवाए छल के कुछ भी नहीं हैं।

मध्यप्रदेश में शायद ही ऐसी दूसरी जगह खोजना थोड़ा मुश्किल सा है, जहां लोगों के पास रहने के लिए पक्के मकान तो हैं, लेकिन खाने के लिए रोटी नहीं है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि ज्यादातर लोग मकान बनवाते–बनवाते ही कंगाल हो गए। न्यू हरसूद जिसे उस समय मुख्यमंत्री रहीं साध्वी उमा भारती ने विस्थापितों का आदर्श नगर बनाने की घोषणा की थी, वास्तव में बेहद बंजर और कठोर जमीन का इलाका था। जिसमें नींव खुदवाने में लोगों को बहुत अधिक पैसा खर्च करना पड़ा। जब किसी की बसी बसाई गृहस्थी उजाड़ दी जाए तो उसकी सबसे पहली जरूरत ठिकाना तलाशना होता है। इसी कमजोरी का सबसे अधिक लाभ न्यू हरसूद में बसने वालों से ठेकेदारों, सीमेंट, रेत और लोहे के व्यापारियों ने उठाया। उन्होंने अमूमन 2300 रूपए प्रति क्विंटल में बिकने वाले लोहे और हजार–पंद्रह सौ की रेत–गिट्टी के लिए मजबूर लोगों से क्रमशः चार हजार और तीन हजार रूपए वसूले।

इस तरह खदेड़े गए लोगों की मुआवजे की रकम घर बनवाने में ही खर्च हो गई।

2004 में हरसूद के लोगों ने अपने ही हांथों से घरों पर रोते हुए हथौड़े चलाए थे और बरसात की आहट के बीच मंगल ग्रह सरीखी लाल और कठोर जमीन पर खुले आसमान के नीचे आ बैठे थे, उनके लिए सबसे पहली जरूरत घर थे, इसलिए उनके पास जो कुछ था, वह सब कुछ उन्होंने अपना घर बनाने में लगा दिया। अब हालत यह है कि उनके पास घर और केवल घर ही हैं। सरकार के नुमाइंदे हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में पक्के मकानों के विहंगम दृश्य दिखाकर अदालतों को यह बताने में कामयाब हो जाते हैं कि लोगों के पर्यावास के समूचे इंतजाम हैं, जबकि यह केवल एक छल है। सरकारी छल। ऐसे ही लोगों के लिए महान शायर दुष्यंत ने कहा था कि....

"यह रोशनी है, हकीकत में एक छल लोगों,
कि जैसे जल में झलकता हुआ महल लोगों।
दरख्त हैं तो परिंदे नजर नहीं आते,
जो मुस्तहक हैं, वही हक से बेदखल लोगों।"

न्यू हरसूद के सरकारी रिकार्ड में वाणिज्य केंद्र के आगे यह दावा किया गया है कि भूखंड विकसित है और कार्य प्रगति पर है। जबकि सच्चाई तो यह है कि महज खाली भूखंडों वाला यह वाणिज्य केंद्र अपनी स्थापना के साथ ही नाकाम हो चुका है। क्योंकि न तो न्यू हरसूद में बस स्टैंड है, न ही मंडी और ही ऋण देने वाले बैंक। इस तरह से हम पाते हैं कि विस्थापितों के इस नए आशियाने में रोजगार का कोई साधन ही नहीं है, हां विकास दिखाने के लिए कंक्रीट की नालियां और अधचुपड़ी डामर की सड़कें जरूर चप्पे–चप्पे पर मौजूद हैं। विस्थापितों की मांगों के लिए लंबी लड़ाई लड़ने वाले डॉ. अशोक श्रीवास्तव कहते हैं कि यह डामर की सड़कें और नालियां इसलिए हैं, क्योंकि सरकार को हाईकोर्ट में यह बताना होता है कि लोगों के लिए कायदे का पुनर्वास किया गया है। डॉ.श्रीवास्तव बताते है कि हरसूद अपने में एक कंप्लीट एकोनॉमिक जोन था। जहां किसानों की बड़ी मंडी थी, लगभग 200 गांवों की सीधी पहुंच थी, जिससे वहां हर किसी के लिए काम था। जबकि यहां हालत बिल्कुल ही बदली हुई है, यहां पक्के मकानों, सरकारी परियोजनाओं के अफसरों के कार्यालयों के अलावा कुछ भी नहीं है। हरसूद की जलसमाधि के कुछ समय पहले वहां मौजूद ख्यात लेखिका अरूंधति राय ने कहा था कि आखिर देश की "प्रगति " को लेकर वह कौन सी अवधारणा है जो अपने ही देशवासियों के मौलिक अधिकारों और उनके हितों को कुचलने की इजाजत देती है। वैसे हरसूद तो उस कथित विकास की प्रक्रिया का ताजा शिकार भर है, जिसके कारण आजादी के बाद से अब तक तीन करोड़ से अधिक लोग अपनी जमीन और संस्कृतियों से विलग हो चुके हैं। इस बीच तमाम लोकतांत्रिक विरोध बेअसर दिखते हैं, क्योंकि क्योंकि मप्र सरकार और बांध की कर्ताधर्ता कंपनी एनएचडीसी तो अपने काम पर इतराने से बाज ही नहीं आ रहे हैं। दोनों ही विकास की ढफली पूरी तरह से मग्न होकर बजा रहे हैं। इसलिए उनको अवाम का दर्द न तो महसूस हो रहा है और न ही वह सचमुच इस दिशा में कुछ करना चाहते हैं।

नर्मदा बचाओ आंदोलन से जुड़े आलोक अग्रवाल बताते हैं कि अभी तक न्यू हरसूद में बसाए गए लोगों को प्लाट के स्वामित्व तक नहीं दिए गए हैं। जिसके कारण उन

लोगों को किसी भी तरह के रोजगार के लिए ऋण नहीं मिल सका है। आलोक बताते हैं कि बीते तीन सालों में यहां अपराध का ग्राफ तेजी से बढ़ा है। चूंकि लोगों के पास रोजगार के साधन नहीं हैं, उनके परंपरागत बाजार खत्म हो गए है और घरों में भूख तेजी से पांव पसारती जा रही है, इसलिए यहां अपराधिक गतिविधियां तेजी से बढ़ती जा रही हैं। ऐसा नहीं कि हरसूद के विस्थापन ने केवल गरीब तबके की आंखों में आंसू दिए। हरसूद के पास छनेरा में किराने के बड़े व्याापारी त्रिलोक भंडारी बताते हैं कि वह स्वर्गीय शहर में भी किराने की दुकान चलाते थे, लेकिन वहां कभी यह संकट नहीं आता था कि परिवार का पेट कैसे भरे , लेकिन यहां हम अपनी पूरी पूंजी दांव पर लगाने के बाद भी अभी तक खुद को स्थापित नहीं कर सके हैं। क्योंकि यहां क्रयशक्ति पहले की तुलाना में आधी भी नहीं रह गई है।

दलितों की कौन सुनेः न्यू हरसूद के सेक्टर सात जिसे दलित सेक्टर भी कहा जाता है, यहां के पचास घरों में से ज्यातर के बच्चे अब अपनी पीठ पर से स्कूली बस्तों को उतार कर गैंती–फावड़ा उठा रहे हैं। राहुल जो हरसूद उजड़ने के समय दसवीं की पढ़ाई कर रहा था, यहां बस्ते को खूंटी पर टांग चुका है। क्योंकि पढ़ाई से अधिक जरूरी है, उसके परिवार के लिए रोटी। हरसूद में मजदूरी करके परिवार का गुजारा करने वाले संतोष बताते हैं कि वहां पर हमारे सामने कभी भूखों मरने की नौबत नहीं आई, क्योंकि वहां खेती किसानी पर्याप्त मात्रा में होती थी, जिसके कारण हमेशा कुछ न कुछ काम मिलता रहता था, लेकिन यहां पर न तो खेती न ही मजदूरी। अभी जैसे–तैसे गुजारा हो रहा है, लेकिन बरसात आते ही जीवकोपार्जन के सारे रास्ते बंद हो जाएंगे।

कहां है रोजगर गारंटी योजनाः विस्थापितों के इस नए डेरे में समस्याओं का अंबार है। दो जून की रोटी का जुगाड़ मुश्किल हो चला है, ऐसे में यह कैसे बर्दाश्त किया जा सकता है कि सरकार लोगों को रोजगार दिलाने के नाम पर खामोश बनी रहे। आखिर क्या कारण है कि यहां पर अभी तक रोजगार गांरटी योजना लागू नहीं की जा सकी है। कुछ जानकार इसका कारण यह भी बताते हैं कि विस्थापन के समय स्थानीय लोगों द्वारा असुविधाओं और भ्रष्टाचार के कारण यहां के लोगों का तीखा विरोध झेलने वाले प्रभावशाली नेता और मंत्री कैलाश विजयवर्गीय, अनूप मिश्रा और स्थानीय विधायक कुवंर विजय शाह अब यहां के लोगों को उस विरोध की सजा दे रहे हैं। यहां सबसे ज्यादा नाराजगी विजय शाह के प्रति है, क्योंकि उनके मुंह से विस्थापन के विरोध में एक शब्द तक नहीं निकला था, जिसके बाद उन्हें भाजपा सरकार द्वारा कैबिनेट मंत्री का तोहफा भी मिला था। अब जबकि यहां मीडिया की आमद भी कम है, कोई भी नेता यहां के लिए आवाज बुलंद नहीं करना चाहता, क्योंकि उसे नहीं लगता कि यहां का वोट बैंक उतना बड़ा है, जो कि चुनाव में अंतर पैदा कर सके। वैसे इस साल यहां की पहली नगर पंचायत के चुनाव में भाजपा को मुंह की खानी पड़ी है,लेकिन लगता नहीं कि वह इस हार से सबक लेगी।

अब भी फंसे हैं लोगः कालीमाचक नदी को दिवंगत हरसूद की जीवनदायिनी कहा जाता था। यह बात और है कि इंदिरा सागर बांध का जलस्तर बढ़ने पर इसके बैकवाटर ने ही हरसूद को डुबोने का काम किया। अब जबकि हरसूद एक बड़े खंडहर

में तब्दील हो चुका है। बावजूद इसके हरसूद के वार्ड क्रमांक 9 मोही रैयत में तकरीबन 30 आदिवासी परिवारों के 150 लोग यहां से जाने को तैयार नहीं हैं, क्योंकि उनको अभी तक मुआवजे की रकम नहीं मिली है।

इन परिवारों में से ही एक मोहन गेंदालाल बताते हैं कि सरकार द्वारा घोषित धारा 4 के प्रावधानों को पूरा करने के बाद भी हम लोग अब तक मुआवजा नहीं पा सके हैं। इन्हीं में से एक पूनम जो टीबी की मरीज हैं, कहती हैं कि पटवारी और अन्य सरकारी अफसरों ने हमसे सरेआम रिश्वत की मांग की थी। अब जिसके पास खाने को ही न हो, वह भला कैसे रिश्वत देगा। मोहन आगे बताते हैं कि उसके बाद पता नहीं कि हमारा मुआवजा कहां गया। वैसे यहां ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जिनको उनका हक नहीं मिला। उनके हिस्से का मुआवजा या तो सरकारी अफसर डकार गए या फिर अन्य दबंग। सरकारी अफसरों जिनमें प्रभारी कलेक्टर संजय गोयल भी शामिल हैं, उनके पास इसका कोई उत्तर नहीं है। यह आदिवासी इससे पहले चिकनगुनिया का प्रकोप भी झेल चुके हैं, बीती बरसात में उनके झोपड़ों से कुछ दूरी पर ही आकर पानी सिमट गया था, लेकिन इस बार भी ऐसा ही होगा, इस बात की गांरटी भला कैसे दी जा सकती है। यहां लगभग 10 बच्चे ऐसे हैं, जिनको न तो पोलियो की दवा पिलाई गई है और न ही अन्य आवश्यक पोषण।

कलेक्टर साहब की बातः खंडवा जिले के प्रभारी कलेक्टर संजय गोयल का कहना है कि प्रशासन अपनी ओर से हर संभव प्रयास कर रहा है। वह लोगों के रोजगार को सवाल को टालते हुए कहते हैं कि विकास की कीमत किसी न किसी रूप में हम सबको ही चुकानी होती है।

Post Comments